जैन न्याय के विकास में लघीयस्त्रय का योगदान

-प्रो. वीरसागर जैन

'लघीयस्त्रय' आचार्य अकलंकदेव द्वारा रचित एक लघुकाय किन्तु बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है | इसमें कुल मिलाकर 78 कारिकाएँ हैं, जो तीन भागों या अध्यायों में विभाजित हैं-

1. **प्रमाणप्रवेश-** इसमें 1 से लेकर 29 तक की 29 कारिकाएँ हैं |
2. **नयप्रवेश-** इसमें 30 से लेकर 50 तक की 21 कारिकाएँ हैं |
3. **प्रवचनप्रवेश-** इसमें 51 से लेकर 78 तक की 28 कारिकाएँ हैं |

उक्त तीनों प्रवेशों अर्थात् अध्यायों में यथानाम विषयवस्तु का वर्णन किया गया है | यथा प्रमाणप्रवेश में प्रमाण का वर्णन है, नयप्रवेश में नय का वर्णन है और प्रवचनप्रवेश में प्रवचन अर्थात् आगम या निक्षेप का वर्णन है; यद्यपि हम कह सकते हैं कि प्रवचनप्रवेश में प्रमाण, नय और निक्षेप -इन तीनों ही न्यायांगों का वर्णन है, क्योंकि स्वयं ग्रन्थकार ने इसकी प्रथम कारिका में ऐसा ही कहा है | यथा-

प्रणिपत्य महावीरं स्याद्वादेकक्षणसप्तकम् |
प्रमाणनयनिक्षेपानभिधास्ये यथागमम् || 51 ||

जो भी हो, लघीयस्त्रय प्रमाण, नय, निक्षेप का वर्णन करनेवाला एक सारभूत न्याय-ग्रन्थ है | यद्यपि आज के समय में लोग इसे बहुत कम जानते हैं, क्योंकि वर्तमान में इसका अध्ययन-अध्यापन लुप्त-सा हो गया है, किन्तु ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होता है कि जैन न्याय के विकास में इस ग्रन्थ का बहुत बड़ा योगदान रहा है | यहाँ हम संक्षेप में यही विचार करना चाहते हैं कि जैन न्याय के विकास में इस ग्रन्थ का क्या योगदान रहा है |

जैन न्याय के प्रमुख या प्राथमिक ग्रन्थ के रूप में आज हम सभी आचार्य माणिक्यनन्दी के परीक्षामुखसूत्र को जानते हैं, वही आज सर्वत्र पढ़ा-पढ़ाया जाता है, विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भी वही पाठ्यक्रम में निर्धारित है, किन्तु यदि यह खोजा जाए कि परीक्षामुख से पहले लोग किस ग्रन्थ के द्वारा न्याय में प्रवेश करते थे तो ज्ञात होगा कि वह यह आचार्य अकलंकदेव द्वारा रचित लघीयस्त्रय ही है, जिसके द्वारा लोग न्याय में प्रवेश किया करते थे | यह लघीयस्त्रय ही प्राचीन काल में जैन न्याय का प्रवेशद्वार रहा है | दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि 'परीक्षामुख' से पहले चलनेवाला 'परीक्षामुख' अर्थात् न्याय का प्रवेशद्वार यह 'लघीयस्त्रय' ही रहा है | 'परीक्षामुख' का अर्थ तो न्याय का प्रवेशद्वार है ही, 'लघीयस्त्रय' का भी मूल नाम 'प्रमाणनयप्रवेश' अर्थात् न्याय का प्रवेशद्वार ही है | 'लघीयस्त्रय' नाम तो बाद में किसी अन्य ने, सम्भवतः सिद्धिविनिश्चय के टीकाकार आचार्य अनन्तवीर्य ने रखा होगा, जैसी कि डॉ. महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने भी सम्भावना व्यक्त की है | देखें 'अकलंकग्रन्थत्रयम्' की प्रस्तावना, पृष्ठ 34-35 जहाँ उन्होंने इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है | यहाँ उसकी कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"मालूम होता है कि ग्रन्थ बनाते समय अकलंकदेव को लघीयस्त्रय नाम की कल्पना नहीं थी | उनके मन में तो दिग्नाग के न्यायप्रवेश जैसा एक जैन न्याय प्रवेश बनाने की बात घूम रही थी |.....अकलंकदेव ने तत्त्वार्थसूत्र के 'प्रमाणनयैरधिगमः' सूत्र में वर्णित अधिगम के उपाय भूत प्रमाण और नय को न्याय शब्द का वाच्य माना है |..... प्रमाणनयप्रवेश की समाप्तिस्थल में विवृत्ति की प्रति में इति प्रमाणनयप्रवेशः समाप्तः कृतिरियं सकलवादिचक्रवर्ती भगवतो अकलंकदेवस्य यह वाक्य पाया जाता है | इस वाक्य से स्पष्ट मालूम होता है अकलंकदेव ने प्रथम ही प्रमाणनयप्रवेशबनाया था |.....प्रश्न है कि इसका 'लघीयस्त्रय' नाम किसने रखा ? मुझे

तो ऐसा लगता है कि यह सूझ अनन्तवीर्य आचार्य कि है क्योंकि 'लघीयस्त्रय' नाम का सबसे पुराना उल्लेख हमें 'सिद्धिविनिश्चय' टीका में मिलता है |"

इस प्रकार यह अत्यन्त स्पष्ट है कि लघीयस्त्रय का जैन न्याय के विकास में अप्रतिम योगदान है | प्राचीन काल में लोग इसी 'लघीयस्त्रय' के माध्यम से जैन न्याय में प्रवेश किया करते थे अथवा जैन न्याय का प्राथमिक अध्ययन किया करते थे, उसीप्रकार जिसप्रकार कि आज हम लोग परीक्षामुख के माध्यम से करते हैं |

इतना ही नहीं, यदि ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होता है कि 'परीक्षामुख' का निर्माण भी इसी 'लघीयस्त्रय' के आधार पर हुआ है, जैसा कि आचार्य लघु अनंतवीर्य के इस श्लोक से भी ध्वनित होता है-

अकलंकवचोम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता ।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ।। - प्रमेयरत्नमाला, मंगलाचरण 2

अर्थ- उन महा बुद्धिमान आचार्य माणिक्यनंदी को प्रणाम हो, जिन्होंने अकलंक के वचन-समुद्र को मथकर न्यायविद्या का अमृत निकाला है |

आचार्य लघु अनंतवीर्य के इस श्लोक से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि 'परीक्षामुख' के निर्माण में 'लघीयस्त्रय' का कितना बड़ा योगदान रहा होगा |

'परीक्षामुख' और 'लघीयस्त्रय' दोनों के समान महत्त्व का एक अन्य प्रमाण यह भी है कि आचार्य प्रभाचंद्र ने इन दोनों पर ही विशालकाय टीकाओं का प्रणयन किया है | 'परीक्षामुख' की टीका का नाम 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' है और 'लघीयस्त्रय' की टीका का नाम 'न्यायकुमुदचन्द्र' है | इस प्रकार ये दोनों ही ग्रन्थ जैन न्याय के दैदीप्यमान नक्षत्र हैं | एक सूर्य है तो दूसरा चन्द्र |

'लघीयस्त्रय' का जैन न्याय के विकास में परीक्षामुख के समान ही ठोस आधारभूत योगदान है -इस बात को हम कतिपय निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से भी भलीभांति समझ सकते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन कभी बाद में लिखा सकेगा, अभी समयाभाव है | यथा-

1. प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाणों की जैन न्याय में आज जो व्यवस्था प्रचलित है, उसका सम्पूर्ण श्रेय लघीयस्त्रय को ही जाता है, क्योंकि उससे पूर्व ऐसी व्यवस्था अन्यत्र कहीं नहीं उपलब्ध होती, अपितु इससे हटकर ही मिलती हैं 'आद्ये परोक्षम्' वाली | किन्तु यहाँ प्रत्यक्ष का लक्षण विशद बनाना, विशद का अर्थ स्पष्ट करना, मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहना आदि अनेक व्यवस्थाएँ लघीयस्त्रय की ही देन हैं | (देखें कारिका 3, 4, 60, 61 आदि)
2. स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क आदि मतिज्ञान भी हैं और श्रुतज्ञान भी | यह भी लघीयस्त्रय की ही विशेष देन है | (देखें कारिका 10 से 11 तक)
3. अर्थ और आलोक ज्ञान के कारण नहीं हैं | ज्ञान के तदुत्पत्ति-तदाकारता वाले सिद्धान्त का निराकरण भी लघीयस्त्रय की ही देन है, जो बाद में परीक्षामुख और उसकी टीकाओं में विशेष पल्लवित हुईं | (देखें कारिका 53 से 58 तक)
4. प्रमाणाभास की व्यवस्थित चर्चा भी सर्वप्रथम लघीयस्त्रय में ही दिखाई देती है | (देखें कारिका 22 से 25 तक)
5. प्रमाण का लक्षण अविसंवादी ज्ञान को बनाना | (देखें कारिका 22)
6. अभाव प्रमाण को प्रत्यक्ष में ही गर्भित करना | (देखें कारिका 15)

7. हेतु के भेद (देखें कारिका 13, 14 आदि)
8. अज्ञाननिवृत्ति एवं हानोपादानोपेक्षा के अतिरिक्त ज्ञान के अवग्रह आदि भेदों में भी पूर्व-पूर्व के ज्ञान को प्रमाण मानना और उत्तर-उत्तर के ज्ञान को फल मानना | (देखें कारिका 6 से 7 तक)

इसी प्रकार की अन्य भी अनेक बातें हैं जिनसे यह बात हस्तामलकवत् स्पष्ट होती है कि 'लघीयस्त्रय' का जैन न्याय के विकास में अप्रतिम योगदान है | जैन न्याय का जब भी इतिहास लिखा जाएगा तो परीक्षामुख की भांति इस ग्रन्थ का नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा | इतना ही नहीं, यह ग्रन्थ तो परीक्षामुख का भी जनक होने से विशेष रूप से प्रणम्य है, जैसा कि आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी ने कहा है | मैं अंत में एक बार पुनः उन्हीं के कथन द्वारा आचार्य अकलंक और आचार्य माणिक्यनंदी दोनों को विनम्र प्रणाम करता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ | यथा-

अकलंकवचोम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ।। - प्रमेयरत्नमाला, मंगलाचरण 2

अर्थ- उन महा बुद्धिमान आचार्य माणिक्यनंदी को प्रणाम हो, जिन्होंने अकलंक के वचन-समुद्र को मथकर न्यायविद्या का अमृत निकाला है |

आचार्य अकलंक की देन

"अकलंकदेव ने कुछ ऐसे हेतुओं की परिकल्पना की है जो उनसे पूर्व नहीं माने गये थे। उनमें मुख्यतया पूर्वचर, उत्तश्चर और सहचर -ये तीन हेतु हैं। इन्हें किसी अन्य तार्किक ने स्वीकार किया हो- यह ज्ञात नहीं। किन्तु अकलंक ने इनकी आवश्यकता एवं अतिरिक्तता का स्वरूप प्रतिपादन किया है, अत: यह उनकी देन कही जा सकती है।" -डॉ . दरबारीलाल कोठिया, जैन तर्कशास्त्र में अनुमानविचार, पृष्ठ 260-255